E-ISSN: 2706-8927
P-ISSN: 2706-8919
www.allstudyjournal.com
IJAAS 2022; 4(3): 143-146
Received: 09-06-2022
Accepted: 13-07-2022

डॉ. मुकुल शर्मा
एसोसिएट प्रोफ़ेसर, श्री वेंकटेश्वर कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
डॉ. मुकुल शर्मा
एसोसिएट प्रोफ़ेसर, श्री वेंकटेश्वर कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

'गली आगे मुड़ती है' (1974): भाषा-शैली

डॉ. मुकुल शर्मा

DOI: https://doi.org/10.33545/27068919.2022.v4.i3b.1168

प्रस्तावना

शिवप्रसाद सिंह-रचित विवेच्य उपन्यास में रामानंद लेखक की भाषा का प्रतिनिधित्व करने वाला पात्र है। वह कथानायक तो है ही, कथाप्रवक्ता भी है। रामानंद की भाषा बहुस्तरीय है। जब वह कोई बयान देता है तो उसकी भाषा वर्णनात्मक हो जाती है, जैसे–बाढ़, दुर्गापूजा, गरबोत्सव और भाषा-आंदोलन से संबंधित दृश्यों का वर्णन, बनारस के गली-कूचों का वर्णन इत्यादि।

जहाँ रामानंद किसी मनोरम प्राकृतिक दृश्य अथवा मानसिक आवर्त का कोई चित्र खींचता है, वहाँ उसकी भाषा काव्यात्मक हो उठती है। गंगा-सौंदर्य के चित्रण तथा रामानंद-किरण-जयंती के प्रेम-प्रसंगों में प्रयुक्त भाषा इसी श्रेणी की है। इन स्थलों पर प्रायः अभिजातस्तरीय भाषा का प्रयोग हुआ है, वाक्य भावानुकूल छोटे-बड़े हैं और अभिव्यक्ति सामान्य न होकर आलंकारिक हो गई है। चिंतन-मनन तथा विवेचन के प्रसंगों में रामानंद की भाषा काफ़ी हद तक तार्किक हो जाती है। तर्कप्रधान भाषा के उदाहरण रामानंद, सुबोध भट्टाचार्य, जयंती, देवनाथ आदि के पारस्परिक वार्तालाप में सहज ही खोजे जा सकते हैं।

रामानंद कहीं तो खड़ी बोली का प्रयोग करता है और कहीं भोजपुरी का। हालाँकि वह गुजराती और बंगला भाषाओं में कहीं बातचीत नहीं करता, पर दोनों ही भाषाओं का उसे अच्छा ज्ञान है। पौराणिक-सांस्कृतिक संदर्भों का हवाला देते समय और किरण को ट्यूशन पढ़ाते समय उसकी भाषा तत्समप्रधान हो जाती है, झूरी-परिवार के साथ वह सहज भोजपुरी का प्रयोग करता है और अपने छात्र-मित्रों के साथ उसकी भाषा आम बोलचाल की भाषा बन जाती है।

उपन्यास के अधिकतर पात्र खड़ी बोली बोलते हैं। सुबोध भट्टाचार्य, रामानंद, किरण, जयंती, रज्जो और श्रीकांत अपनी मातृभाषाओं के अतिरिक्त अन्य भाषाएँ भी जानते हैं। गुजराती लड़की किरण अपने परिवार में गुजराती बोलती है, लेकिन वह रामानंद के साथ खड़ी बोली का प्रयोग करती है। उसे भोजपुरी की भी अच्छी समझ है। जयंती और शोभना बंगलाभाषिणी हैं, पर अपने हिंदी-प्रेम के कारण दोनों ही खड़ी बोली का प्रयोग करती हैं। रज्जो अपने परिवार में काशिका का प्रयोग करती है, पर रामानंद के साथ खड़ी बोली में बातचीत करती है। श्रीकांत घर में भोजपुरी तथा रामानंद और दूसरे दोस्तों के साथ खड़ी बोली का प्रयोग करता है। सिर्फ़ भोजपुरी बोलने वाले पात्र हैं–झूरी-परिवार के सदस्य, झुलनी बुढ़िया, सिचन्ना, रजुल्ली, जगरूप, श्रीकांत की अम्मा, लाजो और दाई माँ। इन सभी पात्रों की भाषा अवधी-मिश्रित पछांही भोजपुरी अर्थात् काशिका है।

उपन्यास में आए पात्रों की भाषा उनके वर्ग, व्यवसाय, मानसिकता आदि के अनुरूप है। उदाहरण के लिए, नन्दू, श्रीकांत, जमुना और लक्ष्य–चारों युवकों के पिता उग्र और क्रोधी स्वभाव के हैं। फलतः उनकी भाषा में भी एक ख़ास तरह की अक्खड़ता और तीखापन देखने को मिलता है। आमतौर से श्रीकांत की भाषा सामान्य है, पर विक्षिप्तमना होने के बाद वह एकदम बदल जाती है। रमेन्द्र माथुर, सुप्रिया, शैल, लीला और मनचंदा की भाषा उनकी छिछली मानसिकता के अनुरूप है, जबकि रामानंद, देबू और नंदकिशोर की भाषा एक परिष्कृत सोच और मानसिकता को प्रकट करती है।

एक पात्र की भाषा भी सर्वत्र एक-सी नहीं रहती। वह भिन्न-भिन्न संदर्भों में बदलती रहती है। उदाहरण के लिए, वह प्यार में कुछ और है, ग़ुस्से में कुछ और। जो देबू रामानंद से हँसकर यह कहता है, "पता नहीं, तुम्हारा जनेऊ किस साल हुआ। हुआ ही होगा, गणेशी तिवारी के वंशज हो। पर अगले सात-आठ दिनों के भीतर तुम्हारा मुण्डन भी हो सकता है और लट्ठोपवीत भी,"[1] वही उसके साथ मतभेद हो जाने पर यह कहकर उससे हमेशा-हमेशा के लिए अलग हो जाता है, "तो तुम कोई और धंधा करो। परिवार चलाओ, शादी-वादी करो। यह राजनीति तुम्हारे बूते की नहीं। तुम बहुत मुँहफट और बेलाग बोलते हो। तुम्हें बात करने की तमीज़ नहीं है। तुम अपने रास्ते, मैं अपने रास्ते।"[2]

उपन्यास में तद्भव और देशज शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है। विदेशी शब्द भी आये हैं–विशेषकर अंग्रेज़ी के। शब्द-चयन के विषय में शिवप्रसाद जी बड़े जागरूक हैं। उन्होंने प्रायः उन्हीं शब्दों को लिया है, जो खड़ी बोली की भंगिमा में अच्छी तरह घुल-मिल गये हैं। अनेक अचंलों तथा विदेशी संस्कृति का समवेत चित्रण होने से कई अनजाने शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। एक ओर यदि कदना, मंडा-जैसी बंगाली मिठाइयों के नाम आये हैं तो दूसरी ओर करालो, दियरिया, होडली बहारबटिया, यमलपत्र-जैसे गुजराती शब्द भी हैं। लेखक ने देसी, भदेस शब्दों-मुहावरों और तत्सम पदावली को साथ-साथ इस्तेमाल किया है। बइठके, टेम, खियाल, हेल, टापकटोप के समानांतर पूत, सुवासित, चिंताधूम, पुराकथा आदि, और बीच-बीच में जज़्ब, करिश्मा, बदबू, नशा-जैसे शब्द हैं। मोटरबोट, रिज़र्व बैंक, हैडक्वार्टर, बाथरूम, कैफ़े, पॉकेट, एक्ज़ाम आदि अनेक अंग्रेज़ी

शब्द भी आये हैं। माइ बॉय, डियर, गुड मॉर्निंग, ओके, हल्लो-जैसे अंग्रेज़ी संबोधन भी ख़ूब आये हैं। पात्रानुसार भाषा का प्रयोग उपन्यास की एक अन्य उल्लेखनीय विशेषता है। इस भाषा-वैविध्य के कुछ उदाहरण देखिये: "हूं ये कहारिन के सिर पे उठा के तीरथ करा, मौ कों का? तू ओ का देवता के मंदिल मां पधराय के पैर पूज, बलैया ले, आरती कर। एही से तेरा परलोक बनेगा। साहूजी बेचारे का नाम काहै घसीटता है अपने साथ। ऊ न होते तो हूं आज बिसनाथ गली मां मलिक का कटोरा लेके भीख माँगता (झुलनी बुढ़िया)। .... जब दो सताये मनई मिलत हैं न बाबू तो उनके बीच एक अनजाना रिस्ता रहत है। अगाड़ी में हम तोहैं सौदाबाजी करे वाला बड़ मनई मानत रहे, बाकी अब तोहरे ऊपर आफत आयी औ हम सोचे, तो लगा कि तू भी हमारे लेखा ई ससुरी बेपेंदी की दुनिया से लड़ रहे हो। हमार-तोहार लड़ाई की किसम अलग हो, मोरचा एकै हो (लाजो)। ... तू कौन है बे? तू समझता है इदर को तेरी नफीस धोती देखकर डर जायेगा? अपन तुम जैसे बोर्जुआ शरीफों को रेट करना जानता। ठीक करेंगा। बी। जरा जोया समुझ ले, हाँ (जसिर्यस)! ... देख लो हुलिया। पहनेंगे साले टेरिलिंग और बदन ऐसा कि कोई कुरता उठाकर पसलियाँ गिन ले। कस के मारे दें एक झापड़ तो शीर्षासन करने लगेंगे। कौन मानेगा इस सिरिया को देखकर, तिवारी बेटा, कि इसके बाप ने काबुल के पहलवान गुलाम गौस को ऐसा घस्सा मारा कि वह अखाड़े में लोटन कबूतर की तरह ढिमला गया था (टुन्नन गुरु)। ... मुझसे मत उड़ा करो बच्चियो, मैंने बहुत दुनिया देखी है। चौबीस की हूँ, चौबीस की। पहली केस ठीक बारह साल की उमर में हुई थी (सुप्रिया)।"

उपन्यास में आये पात्रों की भाषा कृत्रिम न होकर सहज और स्वाभाविक है। यह स्वाभाविकता न केवल भाषा में प्रवाह और लालित्य पैदा करती है, बल्कि चरित्रों को विश्वसनीय और प्रामाणिक भी बनाती है। अपने ऊपर लगाये गये फिज़ूलख़र्ची के आरोप का जवाब देते हुए बिट्टो नन्दू से कहती है, "हूँ, तो मेरी शाहख़र्ची से तिवारी जी दुबला रहे हैं, अरे वाह-रे-वाह, क्या कहने है मिट्टी के शेर, तू तो पैरों में चक्की बाँधे लंका और अस्सी की सड़कों पर कुदक्के लगायेगा और किसी चायघर या रेस्तरां में बैठकर प्यालियाँ ठनकायेगा और फ़िज़ूलख़र्ची की तोहमत मेरे सिर मढ़कर अम्मा को पट्टियाँ पढ़ायेगा–क्यों नहीं करेगा भला। यह तो तेरा जन्मसिद्ध अधिकार है। बड़ा होने का इतना भी फ़ायदा न हो तो जन्म लेने का मज़ा क्या? है न?"[3]

शिवप्रसाद जी की भाषा उपमाओं और अलंकारों का जुलूस अपने साथ लेकर चलती है। इनमें से कुछ उपमाएँ एकदम नयी और ताज़ा हैं। साथ ही, इनसे भाषा की रोचकता और संप्रेषणीयता में भी पर्याप्त वृद्धि हुई है। कुछ चुनी हुई उपमाएँ दृष्टव्य हैं: "मुझे मालवीय पुल जेठ की चनचनाती दोपहरी में स्वप्न-लोक के खुलते-बंद होते पंक्तिबद्ध दरवाज़ों-जैसा लगता है। ... रामकीरतदास एकदम पानी का धक्का लगे-जैसा चेहरा बनाये मेरी ओर गुस्से से देखता रहा। ... हरी बाबू यह सब सुनाकर इस तरह खिलखिलाकर हँसे जैसे आँख-मिचौली के खेल में छुपा संगी पकड़ में आ गया हो। उनका चेहरा मासूम बच्चे की तरह प्यारा-प्यारा लगने लगा। ... एक वीरानी ज़रूर पकड़ में आती थी, जो किसी मरी हुई छिपकली की तरह उनके होठों पर चित्त पड़ी थी। ... छात्र-एकता का पिस्टन इतनी जल्दी-जल्दी लोगों के पैरों को भापशक्ति से धकेल रहा था कि पूरा जुलूस जैसे थरथराती हुई तूफ़ानमेल की तरह विचित्र क़िस्म की गड़गड़ाहट और कम्पन में डूब रहा था। ... कोई कंटीली चीज़ थी, चिचोड़ी हुई मछली की तरह, जो उसके गले में फंस गई थी। उसने अपने दिमाग़ पर ज़ोर डाला–जैसे वह स्पंज हो कि भीतर का द्रव उगल देगा। ... अपने भेद की बातें सुनकर वह कछुए की तरह गरदन की खोल सिकोड़कर कमरे में चला गया था। ... उसकी कमर में वह साड़ी बकरकसाई की दुकान पर लटके परदे की तरह लग रही थी।... कितनी चुस्त काया थी, कम्बलों के भीतर जैसे खूब-खूब भरी-पूरी नये पीपल की गाछ छिपी हो। ... संझा बेला ई जमनादास पहुँचा गाय की नाई डकरता-कलपता। जब मुवै के ख़बर मिली त ई एकदम चुप्पा हो गया मौनी बाबा की तरह। ... ऊँची एड़ी की सैण्डिल पर ऐसे चलती है जैसे कम्बख़्त ने डबल पैड की अण्डरवीयर पहन रखी है। ... उसका पूरा चेहरा, आँखें, खुले हुए होंठ, दहशत से सिकुड़ी और विकृत चेहरे की पेशियाँ–ऐसी लग रही थीं जैसे निचुड़ा हुआ मधुमक्खी का छत्ता हो ... ये चेहरे चेहरे न होकर जैसे प्लास्टिक के आदमकद खिलौने के मुखौटे थे। ... बस इतना जानता हूँ कि लग रहा है कि लोहे की ये तमाम पटरियाँ कसाईख़ाने की विराट मशीनी कैंची की तरह फैली हैं। ... पण्डा जी ने जमुना की ओर इस नज़र से देखा जैसे वह चींटा है जो उनकी जलेबी से चिपटा जा रहा है। ... मेरे हृदय में हूक-जैसी उठी। किसी ने बिना अनी की बरछी हूल दी हो जैसे। ... कचौड़ी और सब्जी के साथ वे मुरदे के जलाने की विविध स्थितियों पर उस तरह निर्लिप्त बोलते जाएँगे जैसे कौर को गले के नीचे सरकाने के लिए चटनी चाट रहे हों। ... साहजी का थुलथुल बदन रह-रहकर फरक जाता था, जैसे जूड़ी-बुख़ार का दौरा पड़ने वाला हो। ... वह हारे हुए जुआड़ी की तरह भों-भों करके रोने लगा। ... उसने अपनी मुट्ठी बांधी और तर्जनी को आकाश की ओर यों तनेन किया जैसे बादल में छेद करने जा रहा हो। ... श्रीकांत समोसे इस तरह खा रहा था जैसे हफ़्तों ज़ंजीर में बंधे उपासे कुत्ते को खाना डाल दिया गया हो। ... सारा स्मगलिंग का सामान उसके शरीर को साँप की केंचुल की तरह चमका रहा था। ... अपनी ही सांस हलक के नीचे इस क़दर उतर रही थी जैसे उसे कोई अंधकूप में रस्सी के सहारे उतार रहा हो।"

उपन्यास में यदा-कदा सूक्तियाँ भी आती हैं, लेकिन भाषिक अभिव्यक्ति के अन्य तत्त्वों की तुलना में उनकी संख्या बहुत अधिक नहीं है। इसलिए वे कथा की मूल भाषा-चेतना का प्रमुख अंग नहीं बन पातीं। फिर भी, यथाप्रसंग आयी कुछ महत्त्वपूर्ण सूक्तियाँ इस प्रकार हैं: "भाग्य और पुण्य से किसी घर में श्री जन्म लेती है रामजी, और वह जहाँ जाती है, सारे घर-परिवार को इंसान बना देती है (जमुना)। ... दुनिया में अच्छी चीज़ को सब देखना चाहते है रामजी, समझे न–पर देखना भी बिना बाधा के कैसे और कहाँ हो पाता है (जमुना)। ... झूठ भी जब हृदय की निर्भीक आंतरिकता में डुबोकर कहा जाता है, ऋषि के लिए भी उसे इंकार कर पाना कठिन हो जाता है। ... प्रशंसा ऐसी बढ़िया चीज़ है, मेरे दोस्त कि इसका सही इस्तेमाल करके तुम जो चाहे वो पा सकते हो (हरिमंगल)। ... भ्रष्ट लोगों के कारण कोई महान् देश गाली का पात्र नहीं बनता (रामानंद)। ... पुरानी जीर्ण चीज़ों की भी एक गंध होती है, यह बेकार होती है, पर पता नहीं क्यों खींचती रहती है। ... सभी मेहमान ही हैं, कोई कुछ रोज़ के, कोई ज़्यादा, पर हैं सभी मेहमान। इसलिए किसी की मेहमानदारी का सवाल कहाँ उठता है (हरिमंगल)। ... सजावट और सौंदर्य में फरक होता है (रामानंद) ... जिस घाव का इलाज संभव नहीं, उसकी पट्टी की गाँठ खोलना जुर्म है। ... शरीर के कष्ट से कई गुना अधिक पीड़ा उस मानसिक कष्ट से होती है, जो मनुष्य की आत्मा को भीतर-ही-भीतर घोंटता रहता है और न वह रो सकता है, न उफ़्फ़ कर सकता है (किरण)! ... प्रीत हो तो झोंपड़ी महल लगती है, सूखी रोटी छप्पन प्रकार के व्यंजनों से भी ज़्यादा मीठी लगती है (नंदू की अम्मा)।"

भाषा को सरस, रोचक और प्रभावपूर्ण बनाने के लिए लेखक ने मुहावरों और लोकोक्तियों का सफल उपयोग किया है। इनके द्वारा उसने न केवल गंभीर भावों को बहुत सहज-सरल ढंग से अभिव्यक्ति प्रदान की है, बल्कि भाषा को प्रवाहपूर्ण और संप्रेषणीय बनाने में भी सफलता अर्जित की है। उपन्यास में इस तरह की अभिव्यक्तियाँ अनेक स्थलों पर हैं, जिनमें से कुछ इस प्रकार है: "कुत्ते की दुम को हज़ार साल नलकी में रखो, वह टेढ़ी-की-टेढ़ी ही रहेगी। तुम लोगों के तो सीधे मुँह बात निकलती ही नहीं (नंदू के पिता)। ... तू फ़िज़ूलख़र्ची वाला आरोप वापिस नहीं लेता तो मैं तेरी नींद हराम कर दूँगी, काइयां कहीं का। तेरी झांसापट्टी अम्मा से ही चल सकती है। मेरे सामने रंग न बदला कर। मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि तू कौन-कौन-से कनकौवे उड़ाता फिरता है (बिट्टो)। ... सुन लो नंदू की माँ, हमारी तुमने जो पगड़ी उछलवायी है, वह रंग लाकर रहेगी। उतरैं ई नीचे तो देखूँ कि कौन मरद है। मैंने एक-एक की धज्जी न उड़ा दी तो मेरे मुँह पर थूक देना (रामकीरतदास)।"

उपन्यास में अनेक स्थलों पर वाक्य-विन्यास के अंतर्गत आए कुछ ध्यानाकर्षक विशेषण भी दृष्टव्य हैं। छैंछी छिनाल, जोकरी अदा, लहाछेह घनघुम्मार बारिश, गदबदे बच्चे, जानमारूँ भौंहें, बारहमज़ा कॉकटेल, जांगरतोड़ मेहनत, अफाट निराशा, शरीफ़ाना भोजपुरी, चिपचिपी शर्मिन्दगी, खुरदुरा चिकनापन, मासूम हिंदी, ममतालु चिकनाहट, सवालिया चेहरा, प्रेमगंधी रस, कुरकुरा बिस्किट-जैसे अनेकानेक विशेषणों का सुंदर प्रयोग रचना की भाषा में एक नई चमक और रवानी पैदा करता है।

'गली आगे मुड़ती है' की भाषा की एक बहुत महत्त्वपूर्ण विशेषता उसकी सांकेतिकता है। स्वयं लेखक के अनुसार, इस औपन्यासिक कृति में "शब्दों की नहीं, प्रतीकों की समस्या है। सभी देवी-देवता प्रतीकों के रूप में आये हैं।"[4] पौराणिक प्रतीकों के अतिरिक्त अभिव्यक्ति की यह सांकेतिकता दूसरे स्थलों पर भी दिखलाई पड़ती है। उदाहरण के लिए, बाढ़-चर्चा के दौरान सुबोध भट्टाचार्य द्वारा प्रसंगवश की गई यह रूपक-टिप्पणी दृष्टव्य है: "यही हमारा देश है, समझे। बाढ़ से घिरा महान् भारत! नये पानी की ऐसी आमद हो रही है कि सब कूल-किनारे टूट गये हैं। कोई मर्यादा नहीं। दूसरी ओर, इस नये जल की अधिकता ने वे प्रणालियाँ भी बंद कर दीं, जिनसे सदियों का ग़लीज़ धीरे-ही-धीरे सही बहा करता था। धारा में मतलब से अधिक फ़ालतू नया जल है, रास्तों पर गटर का सड़ा हुआ पानी। पता नहीं, यह दौर कब तक चलेगा?"[5] सरकारी ऑफ़िस बनाम 'बूढ़ियों का अनाथालय', 'अण्टीपलट', 'पेटफूली औरत', तत्ता, नैजना, लगवाड़ा, टाट आदि शब्द, रामानंद द्वारा किरण का चुम्बन लेने के बाद किन्नी का गुड़िया-प्रसंग, 'मुड़कट्टावीर'-प्रसंग, बाबा कामेश्वरनाथ का अर्द्धांशवाद, शेखर, श्रीकांत, शशि और राजलक्ष्मी की उपमाएँ, विक्षिप्तमना श्रीकांत के संवाद, गोफ़न-ज़ेबरा-प्रसंग, वेदशिरा-धूतपापा-प्रसंग इत्यादि इसी सांकेतिक भाषा के विभिन्न रूप हैं।

प्रतीकात्मक भाषा का आश्रय लेकर कथाकार ने हरिमंगल और लाजो के प्रणय-प्रसंग को बड़ी ख़ूबसूरती के साथ चित्रित किया है: "हरी ने गौर से देखा, वह एक अजीब सिलहुट था। उसने जूड़े को खोल दिया था। खुली चोटी सारे बदन से अलग हवा में ऐसे उड़ रही थी जैसे जामुन की गाछ पर मकोय की लता हो। ..... पल्ले फिर झुके, हवा के धक्के ने हरकत पैदा की। सड़क की बिजली की रोशनी ओटे पर कांपी। एक निहंग हवा कमरे में घुसी। उसने सभी आवरण उलट-पुलट दिये। मकोय की लता गले में उलझ गयी थी।"[6]

शिवप्रसाद जी शैली को लेखकीय व्यक्तित्व का अविभाज्य अंश मानते हैं। वे, कोट बनाम चमड़े के विवाद में न पड़कर, लिखते हैं, "शायद शापेनहाअर का यह कथन मेरी शैली के आदर्श का संकेत है कि 'शैली और कुछ नहीं, मन-बुद्धि अथवा सूक्ष्म मस्तिष्क की विचार-भावनाओं की बाह्य रूपाकृति मात्र है। The style is the physiognomy of the mind, और मेरे निकट उसकी साधना व्यक्तित्व का विलयन है, एक आध्यात्मिक प्रक्रिया। यहाँ आध्यात्मिकता से अभिप्राय है–आंतरिक तन्मयता और वर्ण्य-वस्तु में लेखक की एकान्तिक एकाग्रता।"[7]

'गली आगे मुड़ती है' आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया उपन्यास है, जिसमें रामानंद के माध्यम से लेखक दूसरे अवांतर प्रसंगों, घटनाओं और व्यक्तियों को आलोकित करता चलता है। लेखक ने इसी शैली का चयन क्यों किया? अपने इस 'मैं' की सार्थकता पर टिप्पणी करते हुए शिवप्रसाद सिंह लिखते है, "'मैं' समय के प्रति मेरी निजी प्रतिबद्धता का साक्षी है, जिसके माध्यम से जीवन के प्रत्येक अक्स को मैं सही ढंग से देखना चाहता हूँ। दूसरी ओर, यह 'मैं' इस बात का सबूत है कि 'मैं', वर्तमान युग में जो सामूहिक और यांत्रिक सत्याभासों से परिचालित होने के लिए विवश है, अपने निजी ख़ून-मांस से उपलब्ध सत्य को कहने का प्रयास करता है। यह 'मैं' एक प्रकार से सभी प्रकार के अनुभवों, खण्डों, बिंबों, प्रतीकों, चरित्रांशों तथा संदेहों को सहज सरलीकृत करके एक स्वाभाविक अंतर्निहित एकता छंद में ढालने का माध्यम बन जाता है।"[8] लेकिन इस 'मैं' की केंद्रीय स्थिति के कारण जहाँ संप्रेषण में ग्राह्यता और संस्मरणात्मक सरसता आई है, वहीं प्रस्तुत उपन्यास का शिल्प अकारण बिखराव का शिकार हो गया है।

रामानंद जहाँ अपने जीवन, शहर, मित्रों, घटनाओं, पात्रों और समस्याओं पर टिप्पणी करता है, वहाँ प्रत्यक्ष बयान की शैली दिखलाई पड़ती है। साथ ही, पात्रों के पारस्परिक साहचर्य, स्थितियों और घटनाओं के प्रति उनका टकराव या तनाव दिखलाते हुए संवेदना को उभारने की पद्धति अर्थात् नाटकीय शैली का सहारा भी लिया गया है। काव्यात्मक अथवा चित्रात्मक शैली भी अनेक स्थलों पर देखने को मिलती है–ख़ासकर वहाँ, जहाँ लेखक कुछ चुने हुए ब्यौरों के साथ कोई विशेष दृश्य, कार्य-व्यापार, मनःचित्र अथवा बिंब आदि प्रस्तुत करना चाहता है। दो उदाहरण देखिये: " बनारस भी क्या अदा से बसा हुआ शहर है। गंगा को धनुषाकार होना था तो यहीं क्यों हुई–और यदि हुई ही तो उसने अपने सारे मरोड़ को एक शहर में क्यों बदल दिया? इसे देखकर लगता है जैसे कोई तपस्वी कुमारी अपनी बलखाती कमर पर संस्कृति का कलश धरे चली जा रही है। हाय, यह छत्राकार ज्योति कितनी शाश्वत और अमर है।[9] ... इकतीस जुलाई की वह भोर ख़ूब ताज़ी और रंगीन थी। पूर्वी क्षितिज पर थोड़े सिलेटी बादल थे, पर वे लाख कोशिश के बावजूद आसमान में उछलते लाल रंग के फव्वारे को रोकने में असमर्थ थे। अबीरी रंग का एक अतंतुजाल गंगा के वक्ष पर फैल गया और गंदले-मटमैले पानी की लहरें भी गुलाबी हो गयी थीं।"[10] रामानंद-किरण-जयंती के प्रेम-प्रसंग में जब भी तीनों में से किसी का दिल रोमानी हो उठता है, तभी एकाएक लेखक की शैली काव्यात्मक हो जाती है। इसके अतिरिक्त, लेखक ने यथाप्रसंग व्यंग्यात्मक शैली, संदर्भ-शैली और उद्धरण-शैली का आश्रय भी लिया है। व्यंग्य का एक उदाहरण देखिये: "चूँकि इस युग में असत्य पर शहीद होने वालों की संख्या ही ज़्यादा है, इसलिए शायद हरिश्चंद्र घाट पर अपेक्षाकृत अधिक चिताएँ जलती नज़र आती हैं। यह चिरप्रज्वलित शमशान है, सदा जाग्रत। ..."[11] उपन्यास में बीच-बीच में अनेक ऐतिहासिक, पौराणिक, सांस्कृतिक और सामाजिक संदर्भ आते रहते हैं। चण्ड भैरव, महासुरेन्द्र चण्डमुण्ड, महर्षि दयानंद, सुल्ताना डाकू, देवयानी, सुरसा, दुर्वासा, महिष, डॉन क्विकजोट इत्यादि इसी तरह के कुछ संदर्भ हैं। उपन्यास के आरंभ में ही एक संदर्भ हाज़िर है: "सफ़ेद फ़ालसाई बादल झुक-झुककर इसे चूमते हैं तो मुझे जाने क्यों जेनिफ़र याद आने लगती है ..... मैंने अपनी फ़ैकल्टी के कॉमनरूम में किसी मैगज़ीन में एक तस्वीर देखी थी। लेटी हुई जेनिफ़र की। बिल्कुल छह मेहराबे थीं। इस तरह आसमान देखती लेटी औरतें किसे अच्छी नहीं लगतीं।"[12] बीच-बीच में बहुरंगी उद्धरण देकर लेखक ने उपन्यास की रोचकता को बनाये रखने की कोशिश की है। रेलवे स्टेशन पर तुलसीभक्त शिवमंगल राय को मुक्त स्वर से तुलसी की चौपाई गाते हुए दिखाना इसी शैली का एक प्रत्यक्ष उदाहरण है।

निष्कर्ष रूप में, लेखक के महत्त्वाकांक्षी प्रयास को देखकर 'मैं' शैली का उसका चुनाव निश्चय ही त्रुटिपूर्ण ठहरता है। इससे लेखक जगह-जगह पर शिल्प-संबंधी स्खलन का शिकार हुआ है। मधुरेश के शब्दों में, "सबसे पहली बार सुबोध भट्टाचार्य के प्रसंग में यह स्खलन दिखाई देता है। जब रामानंद उससे मिलने जाता है तो उसकी परिचयात्मक पृष्ठभूमि के ब्यौरे तृतीय पुरुष में, इतिवृत्तात्मक ढंग से दिये जाने लगते हैं। दूसरी बार, हरिमंगल के प्रसंग में स्वयं रामानंद ही 'मैं' से 'वह' हो जाता है। हरिमंगल के ही प्रसंग में, आगे भी जब वह अस्पताल में पड़ा है, रामानंद 'मैं' से रामानंद हो जाता है और इसी का नतीजा यह होता है कि रामानंद की अनुपस्थिति में भी कहानी बदस्तूर चलती रहती है। (यही इसकी) सीमा है–सुविस्तृत सामाजिक ऐतिहासिक फलक को अंकित करने का आग्रह और प्रथम पुरुष की संकरी राह का चुनाव।"[13]

निष्कर्ष रूप में, उपन्यास की भाषा-शैली को लेकर यह कहा जा सकता है कि उसमें कहीं कथोपकथन है, कहीं आंतरिक एकालाप (इण्टीरियर मोनोलॉग), कहीं सुसुप्त चेतना-प्रवाह (स्ट्रीम ऑव कॉन्शसनेस), कहीं स्मृति-पुनरावर्तन (मैमरी फ़्लैश-बैक) तो कहीं सांस्कृतिक संदर्भगूढ़ता और कहीं ऐतिहासिक अंतर्बंधता (हिस्टोरिकल इण्टरलॉकिंग), कहीं नाटकीय पद्धति का अनुसरण है तो कहीं मुक्त रंगमचीय विधान।

संदर्भ

1. शिवप्रसाद सिंह : 'गली आगे मुड़ती है', पृष्ठ-155
2. 'गली आगे मुड़ती है', पृष्ठ-475
3. शिवप्रसाद सिंह : 'गली आगे मुड़ती है', पृष्ठ-16
4. शिवप्रसाद सिंह : साक्षात्कार, पाक्षिक 'सारिका', वर्ष-20, अंक-255, 1 से 15 फरवरी, 1980, पृष्ठ-14, नई दिल्ली
5. शिवप्रसाद सिंह : 'गली आगे मुड़ती है', पृष्ठ-96
6. 'गली आगे मुड़ती है', पृष्ठ-202
7. शिवप्रसाद सिंह : आशाबंध, 'शिखरों का सेतु', 1962, पृष्ठ-12, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
8. शिवप्रसाद सिंह : भूमिका, 'मुरदासराय', 1966, पृष्ठ-20, भारतीय ज्ञानपीठ,

काशी
9. शिवप्रसाद सिंह : 'गली आगे मुड़ती है', पृष्ठ-11
10. 'गली आगे मुड़ती है', पृष्ठ-27
11. 'गली आगे मुड़ती है', पृष्ठ-26
12. 'गली आगे मुड़ती है', पृष्ठ-11
13. मधुरेश : 'संप्रति' (वैचारिक और रचनात्मक स्खलन के बावजूद), 1983, पृष्ठ-79, धरती प्रकाशन, बीकानेर